धर्मव्याध

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति

श्रीनिवास बालभारती - 102

धर्मव्याध

तेलुगु मूल
ए. सोमेश्वर शर्मा

अनुवाद
सी. पद्मावती

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति
2013

Srinivasa Bala Bharati - 102
(Children Series)

DHARMAVYADH

Telugu Version
A. Someswara Sarma

Translator
C.Padmavathy

Editor-in-Chief
Prof. Ravva Sri Hari

T.T.D. Religious Publications Series No.957
©All Rights Reserved
First Edition - 2013

Copies :

Price :

Published by
L.V. Subrahmanyam, I.A.S.,
Executive Officer
Tirumala Tirupati Devasthanams
Tirupati.

Printed at
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati.

भूमिका

फूलों का बगीचा हमारे नेत्रपर्व करने के लिए उस में पेड-पौधों का पोषण भी सावधानी से होना चाहिए। भारतीय समाज समृद्ध होने के लिए भविष्य-भारत के नागरिक जो बालक हैं, उनका पालन-पोषण भी संस्कार युक्त वातावरण में होना चाहिए। अपने देशकी संस्कृति से अनभिज्ञ होकर उन्नत श्रेणी के विद्वान होने पर भी कोई प्रयोजन नहीं है। अतः हमारा कर्तव्य यह है कि उनमें यह जिज्ञासा पैदा करें कि हमारे देश के महापुरुषों तथा पतिव्रताओं का इतना गौरव क्यों किया जाता है? इन गंभीर विषयों को छोटी कहानियों द्वारा बालक-बालिकाओं से कहने से वे हमारी संस्कृति के वालिद होंगे। बाल्यावस्था में संस्कृति की छाप उन पर पडने से बलिग होने के बाद वे समाज से प्रेम कर सकते हैं। ऐसे सद्वर्तन से अपने परिवार, समाज तथा देश का भी कल्याण कर सकते हैं।

इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए तिरुमल-तिरुपति-देवस्थान बालकों के लिए 'श्रीनिवास-बाल-भारती' के अंतर्गत कई पौराणिक एवं आदर्श पुरुषों के जीवनों का संग्रह रूप छोटी पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित कर रहा है। पुस्तक छोटों के लिए होने पर भी बडे भी इन्हें पढकर ज्ञान पा सकते हैं। आदर्श-पुरुषों की जीवन-घटनाएँ भी सरल भाषा में होने से इस बाल-साहित्य से सब लाभ उठाएँ यही आशा है।

स्वर्गीय डा.एस.बी. रघुनाथाचार्य ने बाल-साहित्य की योजना को सुचारु रूप से चलाने के लिए, प्रबुद्ध लेखकों से इन कथाओं का संपादन करा कर पाठकों के लिए सुलभ ग्राह्य बनाया है। उनके सहयोग के लिए मेरे धन्यवाद। इस योजना के लिए जो जो लेखक स्फूर्ती से लिखते रहे हैं उन्हें भी मेरे धन्यवाद।

कार्यकारी अधिकारी
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

प्राक्कथन

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। अगर वे बचपन में ही महोन्नत सज्जनों की जीवनियों के बारे में जानकारी लें, तो अपने भावी जीवन को उदात्त धरातल पर उज्ज्वल रूप से जीने के मौके को प्राप्त कर सकते हैं। उन महोन्नत सज्जनों के जीवन में घटित अनुभवों से हमारी भारतीय संस्कृति, जीवन में आचरणीय मूल धार्मिक सिद्धान्तों तथा नैतिक मूल्यों आदि को वे निश्चय ही सीख सकते हैं। आज की पाठशालाओं में इन विषयों को सिखाने की संभावना नहीं है।

उपरोक्त विषयों को ध्यान में रखकर तिरुमल तिरुपति देवस्थान के प्रचुरण विभाग ने डॉ.एस.वी.रघुनाथाचार्य के संपादन में स्थापित ''बाल भारती सीरीस'' के अन्तर्गत विविध लेखकों के द्वारा तेलुगु में रचित ऋषि-मुनियों व महोन्नत सज्जनों की जीवनियों से संबंधित लगभग १०० पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इनका पाठकों ने समादर किया और इसी प्रोत्साहन से प्रेरित होकर अन्य भाषाओं में भी इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। प्रारम्भिक तौर पर इनको अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है। इनके द्वारा बच्चे व जिज्ञासु पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुँचेगा।

इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का उद्धेश्य यही है कि बच्चे पढें और बडे लोग इनका अध्ययन कर, कहानियों के रूप में इनका वर्णन करें, तद्वारा बच्चों में सृजनात्मक शक्ति को बढा दें। फल स्वरूप बच्चों को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा निश्चय ही बचपन में ही मिलेगी।

आर. श्रीहरि
एडिटर-इन-चीफ
ति.ति.देवस्थानम्

स्वागत

श्रीनिवासदयोद्भूता बालानां स्फूर्तिदायिनी।
भारती जयताल्लोके भारतीयगुणोज्ज्वला।।

जब खण्डान्तरों में सभ्यता की बू तक नहीं थी तब भरतवर्ष अपनी सभ्यता, संस्कार,धर्म, नैतिकाचरण के लिए प्रसिद्ध हो गया था। जो इस पुण्य-भूमि पर जन्मता है वह धर्माचरण में स्थिर होकर अधर्म का सामना करता है और क्रमशः ईश्वराभिमुखी होकर यशोवान होता है। ऐसे महात्माओं के प्रभाव से हमारे जीवन इह-पर दोनों प्रकार लाभान्वित होते हैं। उनके आदर्शमय जीवनों से स्फूर्ति पाता है और समझता है कि मैं इस महान भारत का वारिस हूँ; परंपरागत इस संप्रदाय की रक्ष करना मेरा कर्तव्य है। ऐसी भावना से वह अपने देश की सेवा के लिए तैयार रहता है।

वास्तव में इस देश में कई धर्मात्मा, वीरपुरुष, वीरनारियाँ पैदा हुईं उन्होने संस्कृति की दृढ नीवं डाली है। हमारा भाग्य यही है कि हमारी पैतृक-संपदा के रूप में उज्वल इतिहास की परंपरा है। उनके आदर्शों के पालन करने से ही कोई विद्यावान-विज्ञानी बन सकता है। राष्ट्र के जीवन प्रवाह में वही विज्ञान अचल रहकर जीवन को सुशोभित करता रहता है। इसी सिलासले को आगे बढाने के लिए महात्माओं के जीवनों को संक्षिप्त रूप में आपके सामने रखता हूँ।

हे भारत के भाग्यदाता बालक-आइए-स्फूर्ति पाइए

एस.बी. रघुनाथाचार्य
प्रधान संपादक

विचित्र-जीवन

क्या यह विचित्र विषय नहीं है कि अमिष (माँस) विक्रेता किसी वेद पण्डित और तपस्वी को धर्मोपदेश करें? ऐसी अजीब बात कहीं सुनी है कि माँस-विक्रेता जगत के जीवों के भूत और भविष्य को बता सकता है? यह न असंभव है और न अजीब की बात। हमारे पुराणों में ऐसे कई महात्मा हैं जिन्होंने अपने माता-पिता की अनन्य सेवा करने से और सत्य-व्रत का पालन करने से अलौकिक शक्तियों को अपनाई हैं। ऐसे महान पुरुषों में धर्मव्याध-का नाम अग्रगण्य है। कौशिक एक ब्राह्मण है जो विद्वान होने पर भी अहंकार और क्रोध का गुलाम है। कौशिक ने छीत्कार की दृष्टि से बेचारे एक कौए को भस्म कर दिया था। इस बात को एक पतिव्रता महिला ने अपनी पति-भक्ति की महिमा से जानकर कौशिक से कहा तो वह भौंचक्का रह गया। इतना ही नहीं अपितु धर्म और ज्ञान का उपदेश पाने के लिए आये कौशिक का सारा वृत्तांत सत्यव्रती और पितृभक्ति संपन्न धर्मव्याध ने बिना कहे जान लिया। ऐसे भविष्यद्दर्शन कर सकनेवाले कई महात्माओं का प्रादुर्भाव इस पुण्य-भूमि में हुआ है।

आइए बालकों - ऐसे ज्ञाननेत्र प्राप्त
धर्मव्याध-की कहानी सुनिए!

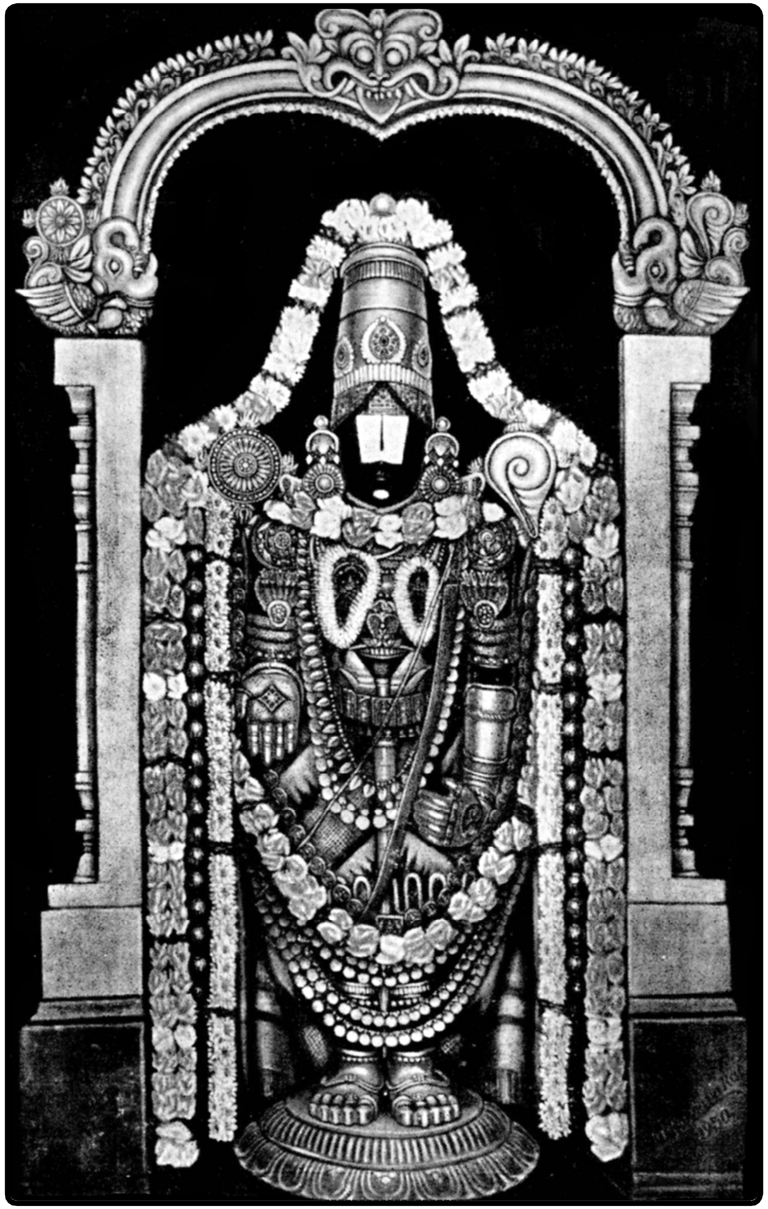

धर्मव्याध

प्राचीन काल में भारत देश में कई विख्यात राज्य थे। उन में विदेह राज्य भी एक था। उसकी राजधानी मिथिला नगर था। यह नगर भूदेवी की सिंधूर के जैसे शोभायमान था। दुर्गो, खाइयों, प्राकारों तथा ऊँचे भवनों से विलसित होकर दिव्य वैभव से संपन्न था। उस नगर के वैभव को विशाल राज-पथ, रम्य पुष्प वाटिकाएँ और निर्मल सरस द्विगुणीकृत करते थे। वहाँ की प्रजा धर्मबद्ध थी। वहाँ के लोग अपने अपने धर्मो का पालन करनेवाले सदाचार संपन्न थे और दूसरों के लिए आदर्शी थे। उस नगर में दुष्ट, अत्याचारी, मूर्ख और समाज के विद्रोही नाम के लिए भी नहीं थे। पुण्य का भण्डागार था।

राजर्षि जनक

मिथिला नगर का राजा जनक था जो आदर्श क्षत्रिय, धर्मानुवर्ती, पण्डित और दानी था। राजनीति के अनुसार वह राज्य करता था। दोषी अपना पुत्र होने पर भी दण्डित होता था। निर्दोषी अपना शत्रु होने पर भी उसका गौरव करता था। उसकी समदृष्टि ऐसी थी। वह राजा प्रजा को अपनी संतान सम मानता था। प्रजा भी राजा के धर्माचरण को अपना आदर्श मानती थी।

धर्मव्याध का संस्कार

मिथिला नगर की आखिरी गली में धर्मव्याध नामक एक शूद्र का भवन था। उसका निवास शुचिपूर्ण और निर्मल था। उसमे धर्मव्याध अपने वृद्ध माता-पिता और सती-पुत्रों के साथ रहता था।

वह वर्ण से शूद्र था और शिकारी था। वह अमिष की बिक्री करके अपना जीवन बिताता था। व्याध का अर्थ शिकार करनेवाला है। वह शिक्षित नहीं था। परंतु गतजन्म की शुभ-वासना के कारण वह समस्त विद्‌याओं का सार ग्रहण कर सका था। धर्म की सूक्ष्मता और धर्मरहस्य उसे करतलामलक था। इसी कारण उसका नाम धर्मव्याध जो था वह सार्थक हुआ था। उसकी कीर्ति चारों ओर व्याप्त हो गयी और जो कोई किसी धार्मिक संदेह में पडे वे उसके पास जाकर शंका-निवृत्ति करते थे। उसके समाधानों से संतुष्ट होते थे।

शिक्षा से अहंकार की वृद्धि

उन दिनों में एक विचित्र घटना घटी। नगर के समीप एक अग्रहार था जिस में कौशिक नामक ब्राह्मण रहता था। वह वेदों और शास्त्रों का अध्ययन कर चुका था। पर क्या लाभ है? शास्त्रों का सार वह ग्रहण नहीं कर सका। उसने तप भी किया था। परंतु उस में कोप-ताप, असहिष्णुता और अहंकार की मात्रा अधिक थी। अपने माता-पिता की अनुमति के बिना वह घर छोडकर वेदाध्ययन के लिए अरण्य में गया।

कौशिक का दुराग्रह

एक दिन वृक्ष के नीचे बैठकर वह वेद कण्ठस्थ कर रहा था। मध्याह्न हो गया था। उस पेड पर से एक बगुला ने टट्टी कर दी जो ठीक उस ब्राह्मण के सिर पर गिर पडा। कौशिक ने जलती हुई आँखों से उस पक्षी को देखकर शाप दिया। वह बेचारी तुरंत

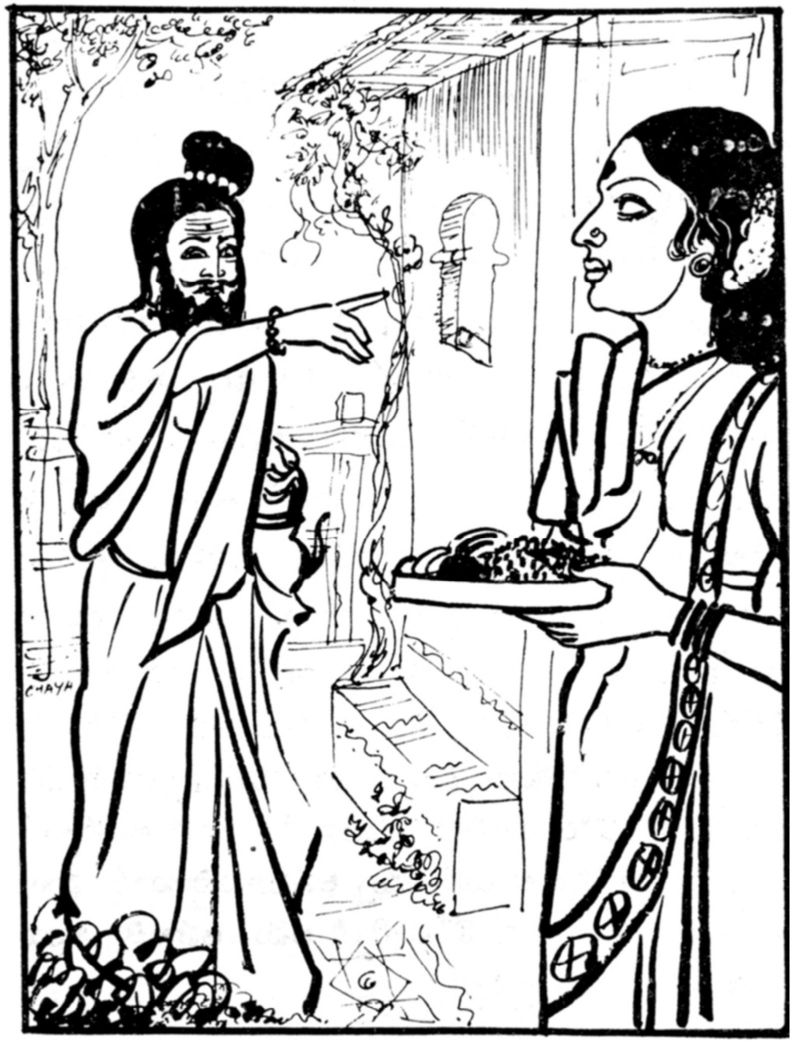

गिरकर मर गयी। इसे देखकर कौशिक को अपनी तपो-शक्ति पर और भी विश्वास हो गया। वह अपना अध्ययन पूरा करके समीप ग्राम में भिक्षाटन के लिए गया। रोज की तरह भिक्षा देनेवाली के घर जाकर ''भवति! भिक्षां देही'' कहने लगा। उस घर की स्त्री अपना काम करते हुए बोली कि -''ठहरिए महराज-भिक्षा दूँगी''- इतने में उस का पति आया। वह भूखा भी था। स्त्री उसका स्वागत दरहास से करके उसका उपचार करने लगी। उसे खान-पान देकर संतुष्ट करने के बाद स्त्री को उस भिक्षक ब्राह्मण की याद हो आयी। वह अपने पति की सेवा के बाद भिक्षा लेकर भिक्षुक के पास गयी। दरवाजे पर वह ब्राह्मण आग बबूला होकर खडा है। उसके नेत्र क्रोधाग्नि से लाल हो गए और उसे क्रोध से देखकर बोला -''तुमने इतना विलम्ब करके मुझ जैसे तपस्वी का अपमान किया है? हूँ!'' वह अपनी क्रोधाग्नि से उस स्त्री को भस्म करना चाहता था। इतने में वह बोली- ''मै उस पेड पर का बगुला नहीं हूँ'' उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि वह साध्वी शापाग्नि से भस्म नहीं हुई और भिक्षा देने के लिए खडी हुई है। वह सोचने लगा कि इसका क्या कारण हो सकता है? वह परम पतिव्रता थी। उसके लिए पति की अपेक्षा और कोई भगवान नहीं है। वह अपने त्रिकरणों (मन, वाक्,कर्म) से अपने पति की आराधना करती है। वह सदाचारिणी। शुचि और पवित्रता से घरेलू काम करती रहती है। देवी-देवताओं की आराधना, बन्धुजनों का आदर-सत्कार करना, घर के नौकर-चाकरों से प्रेम पूर्वक व्यवहार-ये सब उसके नियत कार्य हैं। विनय और नम्रता मानों उस स्त्री के आभूषण हैं। पतिसेवा उसका परमधर्म है। ऐसे धर्माचरण

ऐसे पातिव्रत्य के कारण वह पतिव्रताओं में अग्रणी मानी गयी। इस श्रेष्ठ निष्ठा के कारण अनजान में ही कुछ महान शक्तियाँ उसके वश में आई। उन शक्तियों के फल से वह उस मुनि की क्रोधाग्नि में दग्ध नहीं हुई। कौशिक को इतना आश्चर्य हुआ कि उसे आँखें फाड-फाडकर देखने के सिवा कुछ न कर सका।

वह बोली- ''हे ब्राह्मणोत्तम आप की क्रोधाग्नि में भस्म हो जाने के लिए मैं बगुला नहीं हूँ उस पेड के बगुले को भस्म करने पर भी आपकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई। उसी क्रोध से इधर आए हैं। शान्त होकर भिक्षा स्वीकार कीजिए। कौशिक भौंचक्का रह गया दान्तों तले उंगली दबाकर रह जाने से एक बात भी मुँह से न निकली।

यह कितना विचित्र है कि कहीं अरण्य में निर्जन प्रदेश में घटित उस बगुले की घटना इसे कैसे मालूम हुई है? यह भी बगुला जैसे निर्जीव क्यों नहीं हो सकी! यह रहस्य जानना ही चाहिए। इन क्षुब्ध विचारों से अपने को सजग करते हुए बोला -''हे माते तुम साध्वी हो! मुझे क्षमा करके यह बताओ कि तुम्हें ऐसी दूरदर्शिता कैसे आई जो मेरी तपो-शक्ति से महान लगती है।'' पतिव्रता ने जवाब दिया ''हे भूसुर, मैं ने न तप किया और न अध्यायन किया। मेरी एक मात्र तपो-निष्ठा अपने पति की सेवा ही है। जो कुछ शक्ति मुझे प्राप्त हुई वह इसी का फल है।''

कौशिक ने मन ही मन सोचा-पातिव्रत्य की इतनी महिमा है।

मुझे धर्म की सूक्ष्मता का उपदेश दो-कौशिक ने पूछा। वह बोली -''पातिव्रत्य का धर्म ही स्त्रियों के लिए सर्वश्रेष्ठ है। पति की सेवा

करना समस्त देवताओं की सेवा के समान है। पति की सेवा से स्त्रियों का कल्याण होता है।'' पतिसेवा के परमधर्म के बारे में सुनने के बाद मुनि के धर्मो की सूक्ष्मता का बोध करने के लिए कौशिक ने पूछा। समाधान में उसने कहा-''

''मैं कोई पण्डिताइन नही हूँ। आप के क्रोध को देखकर मुझे एक विषय स्मरण में आया है। वह आपको सुनाऊँगी''

कौशिक ने कहा- ''धन्य हूँ; सावधानी से सुनूँगा''

''क्रोध मानव का शत्रु है जिस से उसका सर्वनाश होता है। विशेष रूप से ब्राह्मण को वह गुण शोभा नही देता जो क्रोध और ताप को छोड देता है वही सच्चा ब्राह्मण है। अभ्यास और आग्रह से क्रोध पर विजय पाना चाहिए।''

ब्राह्मण का आचरण कैसा होना चाहिए

ब्राह्मण के आचरणों को सुनना चाहा ''वेद ही धर्म का मूल है। वेदों का सार सत्य है। सत्य ही धर्म का स्वरूप है। विविध प्रकार के धर्मसूक्ष्म होते है। स्मृतियों और शिष्टाचारों से संप्रदाय के नियमन होते हैं। संप्रदाय के अनुसार धर्मो के रहस्य भी अवगत होते हैं। गुरु की शुश्रूषा करना, सदा सत्य वाक् का पालन करना, अहिंसा व्रत का पालन और धार्मिक जीवन बिताना-ये ब्रह्मणों के साधारण धर्म हैं।

वेदों का अध्ययन करना व कराना

यज्ञों को करना व कराना, दान देना और लेना, - इन्हें षट्कर्म कहते हैं। ये विशेष धर्म माने जाते हैं। इनके प्रति श्रद्धावान जो होता

है वही ब्राह्मण है। इतना ही नहीं अपितु सत्य,सदाचार, समदृष्टि, शान्ति, इन्द्रिय-निग्रह ब्राह्मण के लिए नियत कठिन नियम हैं। इन गुणों से रहित ब्राह्मण बकरी के अजागल के समान है'' इस प्रकार उसे पतिव्रता ने अवबोध किया।

कौशिक बोला- हे माँ मुझे ज्ञानोदय हुआ है। तुमने मुझे अन्न - भिक्षा के साथ ज्ञान - भिक्षा भी प्रदान की है। मैं तो जन्म से ब्राह्मण होकर भी धर्म का सार ग्रहण नहीं कर सका। पतिव्रता उसे सांत्वना देते हुए बोली - ''आप पण्डित होने से इन सब धर्मो को जानते तो हैं। पर क्रोध के आवेश में वे सब व्यर्थ हो गए हैं। क्रोध पर विजय पाने से सब के सब आपके वश में आते हैं।''

धर्मव्याध के पास भेजना

पतिव्रता की बातें सुनकर ब्राह्मण अपने को धन्य समझने लगा और उसने कहा कि क्रोध को दूर करने का प्रयत्न अवश्य करूँगा। पतिव्रता स्त्री ने कहा-

''महराज ठहरिए - एक बात सुनिए। मिथिला नगर में धर्मव्याध नामक शूद्र है जो स्मस्त धर्मो का ज्ञाता है और वह मुझ से बडा महात्मा है। एक बार उससे मिलिए और असुविधा न समझिए। आप के लिए उपयोगी होगा। बातों से भिक्षा देने में मेरे विलम्ब को क्षमा कीजिए; नमस्कार''- कहकर वह अंदर चली गयी।

मिथिलानगर क्या जाना ही पडेगा?

कौशिक का मन विचार-मग्न हो गया। वेदाध्ययन करने पर भी मैं तो मूर्ख ही ठहरा। आज अपने अहंकार से एक सती-साध्वी का

जो मैने अपमान किया उसका प्रायश्चित्त भी हुआ हैं। पातिव्रत्य की महत्ता से मेरी आँखे खुली हैं। कितना विचित्र है कि किसी गुणवती स्त्री ने मुझे धर्म के तत्त्वों को करतलामलक कर दिया। यह सब तो ठीक है। पर यह कौन सा दुर्भाग्य है कि एक शूद्र के पास धर्म-भिक्षा के लिए जाना पड रहा है! ऐसे विचारों से वह अपने को कोसते हुए अपने आवास में पहूँचा।

मिथिलानगर का प्रयाण

दूसरे दिन अपने दैनिक कार्यो से निबटकर शंका करने लगा कि मिथिला जाना है कि नहीं। लेकिन उस पतिव्रता के हितबोध से इतना प्रभावित हुआ था कि उस सत्य पर विश्वास करके कौतूहल से उस नगर की ओर बढ गया।

पहाडों, सरसों, नदियों, मिट्टी के गाँवों, शहरों से होकर वह मिथिलानगर में प्रवेश कर सका। वह नगर आँखों को जगमगाता था। वहाँ की प्रजा का वर्तन और रीति-रिवाज देखकर वह नगर धर्मदेवता का वासस्थान, सत्य का सिंहासन और सद्गुणों की खान की तरह दीख पडा। वहाँ किसी से धर्म व्याध के घर का पता लगाया। धीरे धीरे वहाँ पहूँचा। वह धर्मव्याध के घर का अगवाडा था। वहाँ तरह तरह के अमिष बिक्री के लिए सिद्ध किए गए उस दूकान को फूलमालाओं और धुप-दीपों से सजाया गया है। वह था आमिष की दूकान पर शुभ्रता से माणिक्य की दूकान जैसे जगमगाता था। वह आने-जानेवालों के होने पर भी प्रशान्त था।

ब्राह्मण का स्वागत

उस विक्रयशाला में धर्मव्याध ताराओं के बीच चंद्रमा जैसे बैठा हुआ मिला। अधेड बुन का वह शारीरिक दृढता और तेजस्वता से विद्यमान था। उसका व्यवस्थित शारीरिक घटन और तेज को देखने से वह 'धर्मव्याध' नाम के उपयुक्त था। वह दूर से ही ब्राह्मण को देख चुका और बोला - ''हे विप्रोत्तम, पधारिए, नमस्कार। मेरे गृह को पावन कीजिए'' इस प्रकार कौशिक को उसके स्वागत सत्कार से आश्चर्य हुआ। ब्राह्मण आनंद विभोर हो गया।

कौशिक आश्चर्य में डूब गया

वह दरहास से बोला- ''आर्य आप उस पतिव्रता के भेजने पर इधर आए हैं। मुझे मालूम है कि आप क्यों आए हैं। आप अंदर आइए। मैं अपनी शक्ति के अनुसार कुछ विषयों को विनय से बताऊँगा।''

इन बातों को सुनते ही ब्राह्मण विभ्रान्त हो गया। पतिव्रता का विषय ही आश्चर्य जनक है। उसकी अपेक्षा उस पतिव्रता का प्रस्ताव और भी आश्चर्यान्वित है; वास्तव में यह पुरुष धर्म का ही स्वरूप हैं; कारणजन्मी है; ज्ञान की निधि है। किसी पूर्वजन्म के कर्म परिपाक से शूद्र जन्म लिया है। विनय और नम्रता से इस से धर्म की सूक्ष्मता जानना ही प्रस्तुत अपना कर्तव्य है-'' कौशिक ने ऐसा निश्चय कर लिया।

आमिष की बिक्री क्यों

कौशिक ने पूछा- ''हे धर्मव्याध तुम तो ज्ञान की खनी हो यह निस्संदेह है। मेरे धर्म-संदेहों को तुम्हें समाधान देना है। तुम तो धर्म

की सच्ची प्रतिमा हो। परंतु तुम्हारा यह आमिष-विक्रय उचित कर्म नहीं है। यह विडम्बना कैसी?''

यह मेरा अपना जाति-धर्म हैं

धर्मव्याध बोला -''आर्य, यह हमारी जाति का धर्म है। अपने दादा-परदादाओं से यह मुझे प्राप्त हुआ है। स्वधर्माचरण दोषपूर्ण नहीं हो सकता। सृष्टि का रहस्य भी यही है कि अपने नियत धर्म का पालन करें। इस में कोई वैपरीत्य नहीं हैं। इसकी अपेक्षा मैं अपने स्व-विषय आप से निवेदन करूँगा। मैं सत्य का पूजारी हूँ और धर्म का आराधक हूँ। किसी की निंदा नहीं करता। सब से मैत्री करके सद्वर्तन से रहता हूँ। आमिष के लिए मैं किसी भी पशु की हिंसा नहीं करता। जो दूसरों से मारा जाता है उसी जानवर को खरीदकर उसका कुछ माँस बेचताहूँ और कुछ दान में देता हूँ। पाप-कार्य कभी न करता हूँ और देवताओं तथा अतिथियों का सेवन करता हूँ। इन सब की अपेक्षा मेरे वृद्ध माता-पिता की हार्दिक सेवा करता हूँ। मेरे ख्याल में जाति-धर्म का पालन धर्म-कार्य है और उसे छोड देना अधर्म है।-'' ये बातें सुनकर कौशिक ने पूछा- ''क्या तुम्हारे राज्य में सब इस प्रकार धर्म का पालन करते हैं?''

धर्मव्याध ने जवाब दिया- ''हाँ, इस में कोई शक नहीं है। इस मिथिला राज्य में सब अपने नियत धर्मो का पालन करते हैं। इसका श्रेय हमारे राजा जनक को मिलना चाहिए जो धर्म-प्रभु ही हैं।

''पशु-संहार पाप-कार्य है न?'' कौशिक ने पूछा।धर्मव्याध ने जवाब दिया-''यह बहुत कठिन प्रश्न है। इसका संतृप्त समाधान

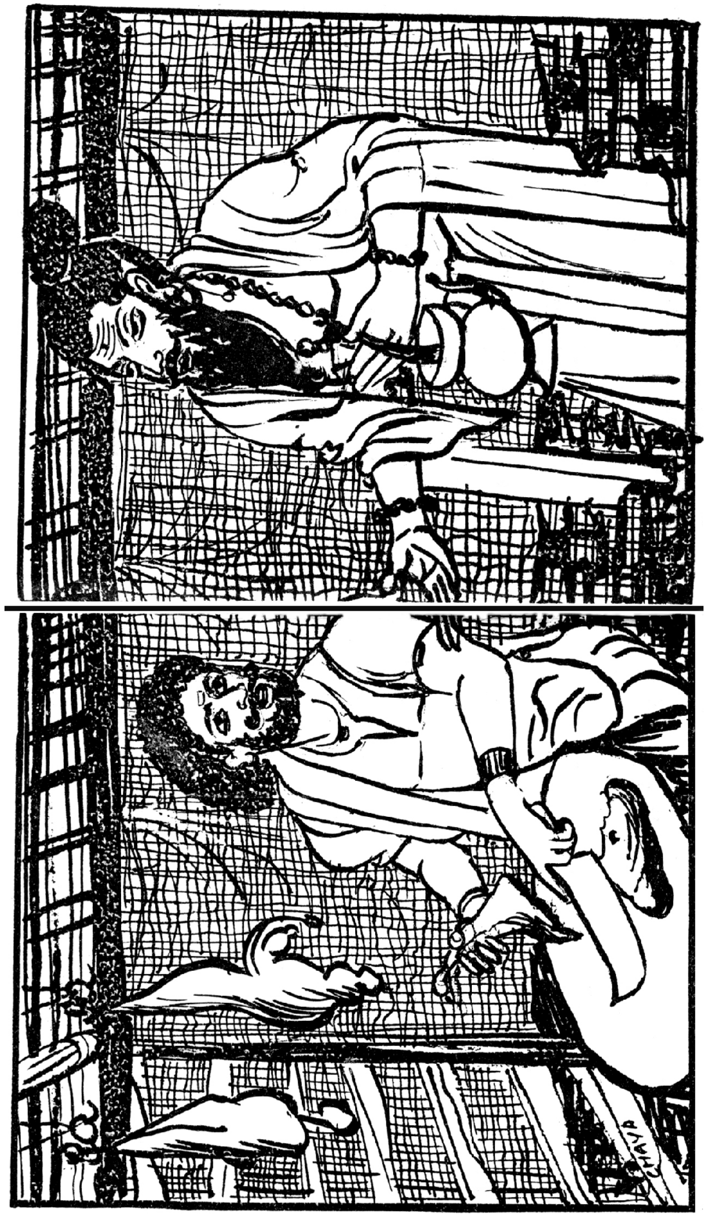

असंभव है। लेकिन मैं अपनी शक्ति के अनुसार समाधान देता हूँ। हमारी परंपरागत विश्वास है कि-'' अहिंसा परमो धर्मः (जीवों की हिंसा न करना परम धर्म है)। परंतु लोक का व्यवहार इसके विपरीत है। सृष्टि में छोटे बडे कई जीव हैं जो करोडों में हैं। रोज किसी न किसी रूप में जीव-हिंसा जारी रहती है। किसानों के लिए जीवहिंसा अपनी कृषि-कर्म का एक भाग सा हो गया है। जो सख्त बूटे-पत्ते खाकर जीते हैं वे भी हिंसा के कारक होते हैं। पेड-पौधों में भी जीव है। राजा लोग अपनो युद्धों में हजारों का संहार करते हैं। सांप बिच्छू जैसों को कोई अपनी बगल में नहीं रखते। बाघ सिंह आदि क्रूर जन्तुओं का पोषण कोई नहीं करते। जलचरों की बात देखिए- छोटे को बडा निगल लेता हैं। एक जीव का दूसरे जीव का आहार बनना सृष्टि की विचित्र-लीला है। साधारण मानव भी सबेरे से शाम तक अनजाने में कई जीवों की हिंसा करता है। महान् योगी भी चलना भोजन करना सो जाना-इन क्रियाओं के द्वारा जीव-हिंसा से नहीं बच सकते। यज्ञ-यागादियों में पशु-हिंसा है ही जिसे दोषरहित कहते हैं। क्रूर जन्तुओं और क्रूर मानवों का समय के अनुसार संहार करने का समर्थन वेदशास्त्रो में है। अतः हिंसा-अहिंसा-इन दोनों के विषय में किसी को भी अपना वैयक्तिक निर्णय नहीं करना चाहिए। धर्म का मार्ग क्लिष्ट है। वेद और शास्त्र जो पथनिर्देश करते हैं उसी का अनुगमन करना चाहिए। शिष्टाचार भी धर्म की सूक्ष्मता का बोध कराता हैं। वेद शास्त्रों से अनभिज्ञ होने पर भी शिष्टाचारियों का अनुगमन करना श्रेयस्कर है।

''शिष्टाचारी कौन है?''

कौशिक के इस प्रश्न का धर्मव्याध शिष्टों का स्वभाव और प्रभाव का विवरण इस प्रकार करता हैं-

''जो वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर चुके हैं और जो उन धर्मों का श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं वे शिष्टाचारी माने जाते हैं। जो, क्रोध अहंकार असहनता अपकार जैसे दुर्गुणों को त्यज कर चुके हों वे भी शिष्टाचारी कहलाते हैं। धर्म, दया, सत्य, शान्ति, सहनता, परोपकार आदि सद्‌गुणों का वास जिनके हृदय में होता है वे ही शिष्टाचारी हैं। समस्त भूतों के प्रति सम-भावना रखनेवाले, समाज के हितैषी और समाज का कल्याण करनेवाले शिष्टाचारी हैं। अपनी सच्छीलता और अपने सद्वर्तन से बहुत लोगों को अपनी ओर आकर्षित करके आदर्श मार्ग पर ले जानेवाले शिष्टाचारी हैं। वे जो कर्तव्य-कर्म करते हैं वे शिष्टाचारी हैं उनका कर्तव्य-कर्म ही सद्वर्तन का प्रमाण माना जाता हैं। उनके कर्मो के मूल की खोज करने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए जब जब धर्म-संशय होता हैं तब ''महाजनों येन गतःस पन्था''- (महात्माओं का अनुसरित पंथा सच्चा मार्ग है) - ऐसा पण्डितों का कहना हैं।

समस्त विद्याओं का सार

धर्मव्याध कहने लगा - ''वेदाध्ययन, देवतार्चन, तपस्या, दान और सत्यव्रत-ये पाँच प्रमुख शिष्टाचार हैं। इन पाँचों का निचोड यही है कि स्वप्न में भी दूसरों की हानि करने का विचार न उठे; अपनी शक्ति के अनुसार दान करना और सत्य का पालन करना-

ये तीनों आचरण शिष्टाचार की जीव-नदियाँ हैं। -इन बातों को सुनकर कौशिक आनंद से बोला- ''धन्य हो धर्मव्याध! तुम्हारा नाम सार्थक हो गया हैं। तुम्हारे धर्मज्ञान के लिए नतमस्तक हूँ।''

धर्मव्याध विनयी होकर बोला-विप्रवर, इस में मेरी कोई विशेषता नहीं है। यह सब आप जैसे महात्माओं की सेवा का फल है।

संसार का परमार्थ क्या हैं?

कौशिक कुतूहल से पूछने लगा - ''इस संसार को देखकर बहुत आश्चर्य होता हैं - जनन - मरण सुख दुख - इनका तर - तम भेद - इनका परम अर्थ क्या हैं?

धर्मव्याध ने जवाब दिया

''यह बहुत जटिल प्रश्न है आज तक कई ऋषि-मुनियों ने तप करके अपने विवेचन से सृष्टि के रहस्यों को विविध रूप से प्रस्तुत किया है। उस (सृष्टि) का स्वरूप ऐसा माना जाता हैं। विविध रूपों का सार यही है कि चेतना ही ब्रह्म है। इसी को सत्यं और आनंद कहते हैं। जीव ब्रह्म का अंश मात्र है। जन्मों के प्रारब्ध से संसार की जाल में पड जाता है। अपने पाप-कर्मो से निकृष्ट जन्म तथा पुण्य-कर्मो से उत्तम जन्म पाता है। उससे किया हुआ कर्म उस के साथ दाग की तरह चिपके रहता है। इसी से वह तरह तरह की यातनाएँ झेलता हैं। उसका कर्म ही जीवों के भेदों का मूल कारण है। शरीर बदलते जाते हैं; पर जीव की आत्मा नित्य है जो नाश रहित है। जब वह अपने बलवती मन और इन्द्रियों को अपने वश में करता हैं, तब स्वस्वरूप ज्ञान पाता है; इस ज्ञान से उसका कर्मबंध छूट

जाता है। इस ज्ञान की पराकाष्ठा को पाने से पुनर्जन्म नहीं होता। इसी को मोक्ष कहते हैं। अपना स्वस्वरूप ज्ञान ही ब्रह्म-विद्या है। कई जन्मों की शुभवासनाओं के फल रूप यह प्राप्त होता है। यह सुलभ प्राप्त नहीं है। सब सुनकर कौशिक बोले

तुम महर्षि हो

कौशिक ने धर्मव्याध से कहा- ''व्याध तुमने मुझे अमृत सदृश ब्रह्मानंद प्रदान किया है जिसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। धर्म, धर्म के रहस्य को और ब्रह्मविद्या का इतना सुलभ-ग्राह्य करने की शक्ति तुम्हें छोडकर अन्यों को नहीं हैं। ''अतः तुम साक्षात् महर्षि हो।'' धर्मव्याध ने नम्रता से कहा- ''हे मुनिवर मेरी इतना स्तुति न कीजिए। मैं उन से दूर हूँ-'' धर्मतत्त्व का विवरण देने के बाद अपने साथ अपने भवन में ले गया।

प्रशान्त-भवन

''महाशय, मेरा ज्ञान और आचरण धर्म में परिनिष्टित है, जिसका प्रत्यक्ष रूप अब देख सकते हैं। मेरे साथ आइए- '' दोनों घर के ऊपर की कक्षा में गए। वह कमरा बहुत सुहावना था। एक ओर देवतार्चन का मंदिर, दीवारों पर बहु देवताओं के चित्र। कमरा परिमल धूप और फूलों की सजावट से अत्यंत सुंदर लगता था। कक्षा में दूसरी ओर साफ किए हुए कपडे लटकाए गए थे। एक ओर पूजा के लिए रंग-बिरंगी सुगंधित पुष्प थे। वहाँ का वातावरण पवित्र और गंभीर था। एक दीवार से सटकर दो भद्रासन बिछे हुए थे। उन पर सुखासन में वृद्ध दम्पति बैठी थी। वे जरा से उत्पन्न दिव्यतेजस्विता

से सुशोभित हैं। श्वेताम्बर पहनकर वे दोनों अरुंधती और वशिष्ठ के समान प्रकाशमान हैं। वे ही धर्मव्याध के माता पिता थे।

धन्य हैं आप के माता-पिता

धर्मव्याध उनके पास जाकर नतमस्तक होकर प्रणाम किया; पादाभिवंदन करने के बाद कौशिक का परिचय कराया। वृद्ध दम्पति मोद से बोले- ''हे मुनिश्रेष्ठ, नमस्कार! आप के आगमन से हमारा गृह पावन हो गया है। यह हमारा सुपुत्र है जो हमारा अमित प्रेम और श्रद्धा से पोषण करता है। यह हमें उन दिनों के परशुराम की याद दिलाता है। यह हमारा महा भाग्य हैं। आप इसे आशीर्वाद दीजिए'' कौशिक बोला- ''आप सौभाग्यशाली और धन्य हैं, जिन्होने ऐसे पुत्र को पाया है। यह लोक के लिए आदर्श-पुत्र है। इस पर देवता लोग आशीर्वादों की वर्षा बरसाएंगे।''

मेरा सब कुछ ये ही हैं।

धर्मव्याध ने कहा - ''हे ब्राह्मणोत्तम, ये मेरे माता-पिता हैं। ये ही मेरे लिए सकल देवताएँ हैं। समस्त देवताओं को समस्त मुनिगणों को और सर्व तीर्थो को इन्हीं में मैं देखता हूँ। ये ही मेरे लिए पवित्र मंदिर हैं। मेरा द्दढ विश्वास है कि त्रिकरणों (मन, वाक् क्रिया) से इनका नित्य सेवन करना परम धर्म और महान-तपस्या है। सबेरे से शाम तक इनकी सुविधाओं की पूर्ति करना मेरा अपना परम कर्तव्य हैं। मैं इनका पादाभिवंदन करता हूँ। इन्हें धो-नहाकर वस्त्र पहनवाता हूँ। उन्हें दूध और फल खाने को देता हूँ। उन्हें लिटवाकर गीत गाऊँगा और उल्लास के लिए कथाश्रवण कराता हूँ। वे जो चाहे उसे

तत्क्षण समर्पित करता हूँ। मेरे माता-पिता ही मेरे लिए अपने सर्वस्व हैं। मेरी पत्नी, बालक नौकर-चाकर सब इनके सेवन में भाग लेते हैं। उनका आनंद ही हमारा आनंद तथा उनका दुःख ही हमारा दुःख है। मन्त्र, नियम, निष्ठा, नीति ये सब इन्हीं में देखते हैं'' इन बातों से कौशिक समझने लगा कि माता-पिता की सेवा इतना महत्वपूर्ण है। यही बात उसने कही तो धर्मव्याध कहता है -

उनका ऋण कौन चुका सकता है

''महाशय इस में संदेह नहीं है। पितृ-भक्ति परम धर्म है। वेदों का उद्घाटन यही है-'' मातृदेवो भव पितृदेवो भव'' (माता-पिताको देवता मानो)। माता का स्थान अग्रिम है। पुत्र पाने की काँक्षा से वह छटपटाती है। उसके लिए स्नान, ध्यान, व्रत उपवास आदि का आचरण करती है। हजारों देवताओं से विनौती करती है। नवमासों के गर्भधारण के बाद प्रसव से उत्पन्न पुत्र को देख कर फूले न समाती है। उसके योग-क्षेम के लिए अपना सर्वस्व त्याग करती हैं। पिता उसकी संरक्षा करके शिक्षा-दीक्षा से उसे संस्कारवान् बनाता हैं। समाज में आदरणीय हो जाता हैं। माता और पिता दोनों अपने पुत्र को उन्नत होने की कामना करते हैं। उसकी प्रगति से सुख तथा पतन से दुःख पाते हैं। ऐसे माता-पिता का ऋण कोई नहीं चुका सकते।'' इस प्रकार धर्मव्याध ने पितृभक्ति की महत्ता समझायी। कौशिक विनय से बोला- ''व्याध,तुमने मेरी आँखे खुलवाई हैं। मेरे अज्ञान को दहन करके मेरी मूर्खता को दूर किया है। पितृभक्ति के बारे में मैने कभी इतनी गंभीरता से सोचा तक नहीं।

धर्म-रहस्य कौन सा हैं

धर्मव्याध समाधान देता है- ''हे विप्रवर मुझे क्षमा कीजिए। मैं तो अल्प-ज्ञानी हूँ। जो मैं जानता हूँ वह कह चुका। धर्म-कोविदों का कहना है कि माता, पिता, अग्नि, परमात्मा, शिक्षा का बोध करनेवाले गुरु-ये पाँचों मानव के लिए गुरू-तुल्य होने पर भी उनमें माता-पिता का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता हैं। धर्म का रहस्य यही है। इतना ही मैं जानता हूँ। पितृ-सेवा के कारण ही मुझे प्रत्यक्ष और परोक्ष में घटित विषय जानने की सिद्धि प्राप्त हुई है। आप के बारे में और आप को जिस पतिव्रता ने भेजा है उस का विषय और भूत भविष्य भी मुझे अवगत हैं। यह सब मेरी पितृभक्ति की महत्ता से प्राप्त हुआ हैं। उस पतिव्रता को अपनी पतिसेवा के कारण सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं तो पितृभक्ति से मुझे और श्रेष्ठ सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। यही मेरे लिए वरदान है। आप से संबंधित रहस्य भी जानता हूँ। उसे आप से कहूँ?'' धर्मव्याधने हंसते हुए पूछा ''जब तुम सर्वज्ञानी हो तब वह भी जानते होगे। उस रहस्य को कहने से मैं अपनी भूल सुधार सकूँगा।'' कौशिक बोला।

'श्रेष्ठ-धर्म वही है'- धर्मव्याध कहने लगा- ''आप ने वेदों और शास्त्रों का अध्ययन किया हैं। तप भी किया है। सब धर्मो के आप ज्ञाता होने पर भी आचरण में असावधान रह रहे है। आपने जो भूल की है वह यही है कि आप में माता-पिता के प्रति न गौरव है न उनकी सेवा आप ने की हैं। आप के माता पिता भोले-भाले बूढे और अंधे भी हैं। उनके अनुनय करने पर भी आप अनसुनी करके

वेदाध्ययन के लिए घर छोड कर आए हैं जो आप की बडी भूल है। यह कार्य धर्म सम्मत नहीं है। आप शीघ्र घर जाकर अपने माता-पिता का सेवन कीजिए। इस से आपको सभी श्रेय प्राप्त होंगे। पाण्डित्य-प्रकर्ष से भी पितृसेवा उत्तमोत्तम है। मैं आप से विनती करता हूँ कि उससे बडा धर्म नहीं है।''

धर्मव्याध की बातों को सुनकर कौशिक अपने अज्ञान के लिए पश्चात्ताप करते हुए बोला- '' हे धर्म के आगार, तुम्हारे बडों को हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ। तुम जैसे धर्मावलम्बी कई हजारों में एक मिलता है। तुमने मुझे उचित उपदेश किया है। मेरा अहंकार का निर्मूलन हुआ है। मेरे ज्ञान-नेत्र खुल गए हैं। आज तक स्त्रियों के प्रति मेरा विचार संकुचित था। पातिव्रत्य की महिमा का अनुभव करने के बाद स्त्रियों के प्रति मेरा गौरव बढ गया है। शूद्र-जाति के लोगों को नीच समझता था। आज तुम्हारे सांगत्य से यह सच निकला है कि जाति प्रधान नहीं; गुण ही प्रधान है। ''गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः- ''गुण ही प्रधान है और पूज्य है न कि लिंग-भेद न जाति-पांति आदि यह ज्ञानियों का कथन है। मैं अब जाऊँगा और अपने माता-पिता की सेवा से तर जाऊँगा।''

ब्राह्मण कौन है

धर्मव्याध ने कहा - ''महाशय, मै कारण-मात्र हूँ। मेरा उपदेश कुछ नहीं। यह सब आप विप्रवर्यों का अनुग्रह मात्र है-'' कौशिक ने कहा-''अब बस करो मित्र, मुझे ब्राह्मण कहलाते लज्जा होती है।

वास्तव में जो धर्मनिरत, गुणवान और शीलवान है वही सच्चा ब्राह्मण है। जन्म से शूद्र होने पर भी ज्ञानी होने पर वह ब्राह्मण है। ज्ञान के बिना जन्म से ब्राह्मण होने पर भी वह शूद्र ही ठहरेगा। प्रधान उसके गुण और कर्म ही हैं। आज से इसी सिद्धान्त का आचरण करके उसका प्रचार करूँगा। मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ-''

पूर्वजन्म में तुम कौन थे?

''मेरा कुतूहल है कि तुम इतने ज्ञानी हो और पिछले जन्म में तुम्हारा वर्तन कैसा था और इस जन्म में यह सब कैसे संभव हुआ है?''

धर्मव्याध ने प्रश्न का जवाब इस प्रकार दिया - ''हे विप्रवर, पिछले जन्म में मैं भी ब्राह्मण पण्डित था। एक राजा के साथ मेरी मित्रता हुई। मित्रता इतनी गाढी हो गयी कि मैने उस से शस्त्र-विद्या भी सीख ली। एक दिन हम दोनों जंगल गए। वह शिकार करने लगा। मैने भी चपलता से एक बाण छोडा, जो किसी मुनि को चुभ गया। यह अनजान में करने पर भी अपराध ही है। उस मुनि ने शूद्र जन्म लेने का शाप दिया। मैने उसके हाथ-पैर पकडकर विनती की तो उसने दया से कहा- ''एक बार शूद्र-जन्म लेना अवश्यंभावी है; पर शूद्र होने पर भी धर्म-निरत रहोगे और अपनी पितृ-भक्ति की महत्ता से पुनः ब्राह्मण जन्म पा सकोगे। शाप का फल यही है। यही मेरी राम-कहानी है।'' ''हे धर्मत्मा व्याध, मै बहुत खुश हो गया अब मैं चलूँगा। तुम्हारा धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा''-

कौशिक से बिदा लेते हुए धर्मव्याध ने कहा- ''धर्मो रक्षति रक्षितः'' (जो धर्म की रक्षा करते हैं उनकी रक्षा धर्म ही करेगी।) कौशिक अपने घर जाकर माता पिता की सेवा में रत रह गया। धर्मव्याध अपने धर्म के कारण उसकी कीर्ति अजरामर हो गयी।

* * *